ORIGINAL RESEARCH PAPER

History

KEY WORDS: मृदा, जलोढ़, उप–पर्वतीय, मैग्नीशियम, नाइट्रोजन, कैल्शियम, आयरन, पोटाशियम, जिंक।

गुप्त कालीन मथुरा कला की विशेषतायें

डा० कृष्ण कान्त शर्मा (शोध निदेशक) वैंकटेश्वरा विश्वविद्यालय, गजरौला, जिला अमरोहा

अमित जैन शोधार्थी, वैंकटेश्वरा विश्वविद्यालय, गजरौला, जिला अमरोहा

गुप्तकाल को प्राचीन भारत का क्लासिकल युग भी कहा जाता है। यह कथन उच्च वर्गों के सन्दर्भ में ही सही है, जिनका जीवन–स्तर अपूर्व ऊँचाई पर पहुँचा हुआ था और यह मुख्यतया उत्तरी भारत के लिये सत्य था। बीसवीं सदी के प्रारम्भ में लिखने वाले इतिहासकारों के लिये स्वर्ण युग एक यूरोपिया था, जिसका अस्तित्व सुदूर अतीत में ही हो सकता था, फलतः प्रारम्भिक भारत के इतिहास पर काम करने वालों ने जिसे स्वर्ण युग कहा, उसमें हिन्दू संस्कृति दृढ़तापूर्वक स्थापित हो गई थी। फिर भी गुप्तकाल का क्लासिकीवाद केवल उत्तरी भारत तक सीमित था, क्योंकि दक्खन और दक्षिणी भारत में गुप्तकाल के पश्चात् ही उच्च स्तरीय सभ्यता का विकास हुआ।[1] अतः उत्तर भारत के स्वर्ण युग के अन्तर्गत कला विभिन्न रूपों में अपने विकास के चर्मोत्कर्ष पर थी विशेषकर शिल्प में।

इस काल की कला की प्रमुख विशिष्टता मूर्तिकला है। कलाकार के कुशल हाथों में पड़कर इस काल की 'मिट्टी और पत्थर' सौन्दर्य की जीती–जागती प्रतिमाओं में बदल गये। गुप्तकालीन कलाकारों ने कुषाण काल की शारीरिक सौन्दर्य के सीधे प्रदर्शन को नहीं अपनाया वरन् स्थूल सौन्दर्य और भाव सौन्दर्य का सुन्दर योग स्थापित किया। गुप्तकाल में विवस्त्र चित्रण का कोई स्थान नहीं है, जब कि कुषाण कला की वह एक अपनी विशेषता थी। कुषाण कला का पारदर्शक वस्त्र शरीर के सौष्ठव को चमकाने के लिए बनाया जाता था, परन्तु गुप्तकाल का वस्त्र विलास उसे सुरुचित पूर्ण ढंग से आच्छादित करने के लिये ही बनाया गया।

गुप्तकालीन कला में सौन्दर्य और प्रतिबन्ध की विलक्षणता है। इस युग में कलाकार का महत्व, प्रदर्शन के हेतु विस्तृत कलाकृति पर निर्भर नहीं था परन्तु उसने अपना ध्यान लालित्य पर केन्द्रीभूत कर दिया था, जो अलंकरण और सुशोभन की प्रचुरता में लुप्तप्राय नहीं होता था। उसकी कला का प्रमुख लक्षण रूढ़िवाद के घोर घातक बोझ से छुटकारा पाना, स्वच्छन्दता और सन्तुलन था।[2]

वेदिका स्तम्भों पर अंकित क्रीड़ारत युवतियों का अंकन गुप्त युग में लोकप्रिय न रहा। अब इन बाहर की प्रतिमाओं की अपेक्षा पास्य मूर्ति के सौन्दर्य को अधिक महत्व दिया जाने लगा। गुप्तकाल की कला जो मथुरा की कुषाण कला से उद्भूत है, स्वतः एकरूप एवं स्वाभाविक है।[3]

गुप्तकालीन मानव मूर्तियों की कुछ विशेषतायें बहुधा सर्व साधारण रूप से देखी जा सकती हैं जो सादी एवं प्रभावोत्पादक शैली की हैं जिसकी सहायता से अनेक भव्य आदर्श साकार हो उठे हैं। बुद्ध की कुछ मूर्तियों में[4] तथा मथुरा की गुप्तकालीन विष्णु मूर्ति में आध्यात्मिक शान्ति, प्रसन्नता, स्नेह व दयाशीलता के स्पष्ट दर्शन होते हैं। पाषाण प्रतिमाओं में आंखों की पुतलियाँ कम ही बनती रहीं और आँखे अध खुली थीं।

मूर्ति के अंकन में यथार्थ की अपेक्षा आदर्श की मात्रा बढ़ गयी। उदाहरण के लिये आँखें अब गोल नहीं होती थीं अपितु वे धनुषाकार भोंहों के साथ कान तक फैल जाती थीं और आकार में लम्बी और कोनेदार दिखलाई पड़ीं।

नाक सीधी, कपोल चिकने, होठ कुछ मोटे तथा गड्ढेदार बनाये जाने लगे। कानों की बनावट में भी महत्वपूर्ण अन्तर हो गया। कुषाण काल में हास्य का प्रदर्शन करने के लिये कभी–कभी दन्तावली दिखलाई जाती है, पर गुप्तकाल में विशेष प्रकार की मूर्तियों को छोड़कर सामान्यतः केवल मंदस्मित से ही काम लिया गया है। इस काल की वस्त्र विशेषता के अन्तर्गत वस्त्र साधारणतया झीने और शरीर से चिपके हुए दिखलाई पड़ते हैं। कुषाण काल की अपेक्षा अलंकारों की संख्या कम होने लगती है। कुछ चुने हुए आभूषण जैसे कंठ की एकावली, हाथों के अंगद और कंकण, मोतियों का जनेऊ, करधनी और नूपुर ही साधारणतया दिखलाई पड़ते हैं।

विष्णु, कार्तिकेय, इन्द्र आदि मूर्तियों में भौहों के बीच दिखलाई पड़ने वाला देवत्व का प्रदर्शक ऊर्ण चिन्ह अब अदृश्य हो जाता है। केशों की बनावट में अनेक आकर्षक प्रकार दिखलाई पड़ने लगते हैं।

गुप्तकालीन बुद्ध मूर्तियों की मुख्य विशेषताओं में आध्यात्मिक चिन्तन, शान्ति और स्मित के मुख पर स्पष्ट दर्शन हैं। शरीर की बनावट में मृदुता तथा वस्त्र झीने और पारदर्शक होने लगे।

बुद्ध मूर्ति का प्रभामण्डल अधिक अलंकृत होने लगा। कुषाण कला में प्रभामण्डल के किनारे पर प्रायः अर्धचन्द्र या हस्तिनख की पंक्ति बनी रहती थी पर अब इसके साथ–साथ विकसित कमल, पत्रावली, पुष्पलता आदि कई अभिप्राय बनाये जाने लगे। घुंघराले बालों से अलंकृत मस्तक का स्थान अब बुद्ध के मण्डित मस्तक ने ले लिया।[5]

कुषाण काल में भौहों के बीच दिखलाई पड़ने वाला उर्णा चिन्ह अब इनी–गिनी मूर्तियों में दिखलाई पड़ता है।[6] इन मूर्तियों को केवल परिपाटी के पालन का नमूना कहा जा सकता है। साधारणतया ऊर्णा सिंह अब कुषाण काल के समान आवश्यक नहीं समझा जाता था। अभयमुद्रा दिखलाने वाले हाथ की स्थिति में भी अब परिवर्तन हो गया। कुषाण मूर्तियों में यह हाथ लगभग कन्धे तक ऊँचा उठा रहता है, पर गुप्त–बुद्ध प्रतिमा में वह लगभग समकोण बनाते हुए अधिकाधिक कर तक ही उठता है।[7]

कानों की लम्बाई व सारे चेहरे की बनावट तथा हाथों की बनावट में भी अन्तर है। हाथ की मुख्य विशेषता उसकी उंगलियों में है। कुषाण काल में जहाँ पाँचों उंगलियाँ मिली हुई दिखलाई पड़ती है, वहाँ गुप्तकाल में वे सम्मुख भाग में एक–दूसरे से पृथक मालूम पड़ती है।[8] हथेलियों पर बनने वाले चिन्ह गुप्तकाल में कम हो जाते हैं। यहाँ सामुद्रिक रेखायें तो रहती हैं, पर धर्मचक्र और त्रिरन्त नहीं रहते हैं।

मथुरा शैली की प्रारम्भिक बुद्धों एवं बोधिसत्व की मूर्तियाँ गठी हुई प्रसन्न आकृतियाँ हैं, जिनमें आध्यात्मिकता का आभास नहीं है परन्तु उत्तरकाल में उनमें सौन्दर्य एवं धार्मिक भावना का विकास हुआ। यद्यपि मथुरा शैली प्रारम्भिक भारतीय परम्परा की बहुत ऋणी हैं तथापि उसने उत्तर पश्चिम का भी अनुकरण किया और एक से अधिक यूनानी चेष्टाओं को ग्रहण किया। मथुरा शैली के द्वारा उस शैली का विकास हुआ जो सामान्यतः गुप्त शैली के नाम से प्रसिद्ध हैं औश्र जिसने भारत की कुछ महान धार्मिक मूर्तियों का निर्माण किया।[9]

इसके साथ परखम से मिली ई०पू०दूसरी शती की अभिलिखित यक्ष मूर्ति से लेकर जेल के टीले से प्राप्त अभिलिखित गुप्तकालीन बुद्धमूर्ति, मथुरा में शिल्प कला के पाँचवी शती ई० तक नियमित रूप से चलते रहे संस्थापक स्वरूप को संजोये हैं। इसी प्रकार की मूर्तियाँ मथुरा से बाहर तक्षशिला, सारनाथ, श्रावस्ती, भरतपुर, बुद्धगया, सांची, कुशीनगर, मूसानगर तथा कौशाम्बी से भी प्राप्त हुई हैं। इस शैली के प्रभाव के प्रमाण दक्षिण पूर्वी एशिया तथा चीन के शात्सी स्थान से मिले हैं।[10]

सन्दर्भ सूची

1. थापर, रोमिला – भारत का इतिहास, पृ० 123, प्रकाशक – राजकमल प्रकाशन प्राइवेट, लिमिटेड, 1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली – 110 002, 1990.
2. लूनिया, बी० एन० – भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास, पृ० 188, प्रकाशक – लक्ष्मी नारायण अलग्रवाल, आगरा–3, 1978.
3. स्वामी, आनन्द कुमार – हिस्ट्री आफ इण्डियन एण्ड इन्डोनेशियन आर्ट, पृ० 62, प्रकाशक – कार्ल डब्लू हर्षमेन लिपजिक, लन्दन, 1927.
4. संग्रहालय संख्या 00 ए 5.
5. कैमरिच, स्टैला – इण्डियन स्कल्पचर्स, पृ० 63, प्रकाशक – वाई.एम.सी.ए. पब्लिशिंग हाउस, 5, रसैल स्ट्रीट, कलकत्ता – 1933.
6. (क)संग्रहालय संख्या 18.1391
(ख)संग्रहालय संख्या 33.2337
(ग)संग्रहालय संख्या 2309.33 ई०
7. (क)संग्रहालय संख्या 00 ए०।
(ख) संग्रहालय संख्या 39.2831
(ग) संग्रहालय संख्या 00 ए० 5
8. जोशी, एन०पी० – मथुरा की मूर्तिकला, पृ० 31, प्रकाशक – मथुरा संग्रहालय, मथुरा, 1965.
9. बाशम, ए०एल० – अद्भुत भारत, पृ० 307, प्रकाशक – शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, अस्पताल रोड, आगरा–3, 1992.
10. जोशी, एन०पी० – मथुरा की मूर्तिकला, प्रकाशक – मथुरा संग्रहालय, मथुरा, 1965.